International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048 9458

योग : जीवन के सम्यक् संतुलन की साधना

डॉ सुमन
सहायक प्रोफेसर, संस्कृत, आदर्श महिला महाविद्यालय, भिवानी।
Email: sarichwal@gmail.com

सारांश

इस भौतिकवादी युग में प्रायः प्रत्येक जन मानसिक तनाव से ग्रस्त दिखाई देता है। यह तनाव आज के समाज में उत्पन्न हो रही अराजकता, दरिद्रता, ईर्ष्या, वैमनस्य ,असहिष्णुता, आर्थिक विषमता, रोग, मानसिक कष्ट एवं नैतिक पतन इत्यादि की उपज है। यदि मनुष्य इन समस्त विषमताओ से मुक्त होकर स्वस्थ, शांत एवं आनंदपूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहता है तो उसका केवल एक ही निदान है, वह है योग। योग एक समग्र अभ्यास है जो व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्तर पर स्वस्थ और संतुलित जीवन जीने में मदद करता है। प्रत्येक आयु एवं शारीरिक सामर्थ्य वाले व्यक्ति के द्वारा यह योग पद्धति अपनाई जा सकती हैं।

प्राचीन वैदिक परंपरा की अनुपम देन योग है, जिसे हमारे ऋषि मुनियों के द्वारा समग्र मानवता के कल्याण हेतु विकसित किया गया। यह योग वर्तमान समय में ऐसी अमूल्य औषधि है जिसका प्रयोग कर प्रत्येक व्यक्ति स्वस्थ मस्तिष्क व स्वस्थ शरीर को प्राप्त कर निरोगी बन सकता है। योग एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है, जो शरीर, मन और आत्मा को संतुलित करती है। योग केवल शारीरिक अभ्यास नहीं, वरन् आत्मा की ओर यात्रा है। यह भारत की अमूल्य और सार्वकालिक देन है। योग भारत की एक ऐसी अमूल्य धरोहर है जो आज के विचलित, संदिग्ध एवं तनाव ग्रस्त वातावरण में संजीवनी के समान है। यह न केवल रोगों से मुक्ति का साधन है, अपितु एक आत्मिक यात्रा है –स्व से परमात्मा तक की।

विभाजन और विविधताओं का जो प्रपंच आज वर्तमान समय में दृष्टिगोचर होता है उसका निराकरण भी केवल योग के माध्यम से ही संभव है। योग समरसता का सूत्र है जो हमें महसूस कराता है कि हमारे भीतर एवं बाहर व्यापक एकता का प्रवाह निरंतर प्रवाहित हो रहा है। जब हम इस अदृश्य एकता को अनुभव करते हैं तो भिन्नताओं का बोध स्वतः ही लुप्त हो जाता है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आत्मशांति एवं सार्वभौमिक एकता का केवल एक ही मार्ग है, योग। इसकी आत्मा में समर्पण, संयम एवं साधना समाहित है जो किसी भी व्यक्ति को मानसिक, शारीरिक एवं आध्यात्मिकता से परिपूर्ण कर देती है।

मुख्य शब्दः आत्मिक, भक्तियोग, समाधिस्थ, सार्वभौमिक, ब्रह्मस्वरूप, तत्त्वज्ञान, आत्म–अनुभव आत्मसाक्षात्कार, श्वेताश्वतर उपनिषद, पथप्रदर्शक।

परिचय

योग शब्द संस्कृत की युज् धातु से बना है, जिसका अर्थ है – जोड़ना, संलग्न करना, समायोजित करना या भावनात्मक एकता लाना। आर्य साहित्य में योग शब्द का प्रयोग अलग–अलग अर्थों में किया गया है और इसका क्षेत्रफल बहुत व्यापक हो गया है। इसका उपयोग राजयोग, हठयोग, ध्यानयोग, मनोयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, मंत्रयोग, लययोग, नादयोग, चक्रयोग, कुंडलिनीयोग, क्रियायोग, ब्रह्मयोग, राजगुह्ययोग, विभूतियोग और मोक्षयोग आदि विभिन्न नामों से किया गया है। वेदांत के मत के अनुसार –

संयोग योग इत्युक्तो जीवात्मः परमात्मनः।

इसका अर्थ है कि योग जीवात्मा और परमात्मा की एकता की भावना का नाम है। योग का उद्देश्य मन को अधिकाधिक शांत बनाना, ब्रह्मस्वरूप की स्थिति को अधिकाधिक महसूस करना और उस महान ब्रह्मस्वरूप में विलीन होने की परम इच्छा पैदा करना है। तो योग वह उपलब्धि तालिका है जिसके साथ एक योगी जीवात्मा और परमात्मा के एकीकृत को महसूस करता है।

सांख्य के अनुसार जब प्रकृति की जड़ता दूर होती है, तभी हमें पुण्य ब्रह्म की सूक्ष्म जीवन रेखाओं का अनुभव होता है। हम इसे इस तरह से भी कह सकते हैं कि योग मनुष्य और प्रकृति का विभेद है और उन्हें ब्रह्मस्वरूप में स्थापित करता है।

जितना हम जड़ता से हटकर आत्मचिंतन की ओर बढ़ते हैं, उसी अनुपात में हमारे भीतर अपार शक्ति और अथाह ज्ञान का उदय होता है। धीरे–धीरे वह (साधक) भगवान की ओर जाता है और उसका मन जीवन के ऐसे क्षेत्र में प्रवेश करता है जो स्थान और समय से परे है और बाद में साधक प्रतिदिन पूरी तरह से स्वयं को भगवान में तल्लीन कर लेता है या हम कह सकते हैं कि साधक को मन की एक ऐसी अवस्था मिलती है जिसमें उसकी चेतना अत्यन्त कोमल, सूक्ष्म और परिष्कृत होती है। यह स्थिति न तो जागृति है, न स्वप्न और न ही गहन निद्रा, अपितु एक आत्मसिद्ध समाधिस्थ स्थिति है, जहाँ स्वैच्छिक क्रिया भी मौन हो जाती है और केवल ब्रह्म की अनुभूति रह जाती है।

उपनिषदों में योग की महत्ता का निरंतर प्रतिपादन किया गया है। कठोपनिषद् में कहा गया है–

तं दुर्दर्शं गूढ़मनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम् ।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मंत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ।।

अर्थात् – धीर व्यक्ति, खुशी और दुःख दोनों को तब त्याग देता है जब वह आंतरिक आत्म पर ध्यान (योग) के माध्यम से महसूस करता है कि वह प्राचीन तेजस्वी एक (जिसे देखने में कठिन, गहरा, अनुभव में छिपा हुआ) हृदय की गुहा में स्थापित और शरीर के भीतर निवास करता है। अर्थात् ईश्वर या आत्मा में इतना तेज होता है कि हम अपनी प्राकृतिक दृष्टि से नहीं देख सकते हैं और यह तेज एक ऐसे गुप्त स्थान पर प्रवेश किये हुए है जिसे

एक धैर्यवान व्यक्ति ही जानता है। इसे जानने पर ही वह प्रसन्नता और दुःखो के सभी विचारों का त्याग कर देता है। यही वैराग्य की पूर्णता तथा आत्मज्ञान की उपलब्धि है।

प्राचीन शास्त्रों और ऋषि–मनीषियों का मत है कि योग का परम लक्ष्य अद्वैत की अनुभूति में ही निहित है। जब ज्ञानीजन योग की साधना में लीन होकर आत्मा की वास्तविक सत्ता का साक्षात्कार करते हैं, तब उन्हें यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि इस ब्रह्मांड में कोई 'द्वितीय' नहीं है – सब कुछ उसी एक परम चेतना की ही अभिव्यक्ति है।

"एकोऽहम् बहुस्याम्" की उद्‌घोषणा उसी तत्त्वज्ञान की ओर संकेत करती है, जहाँ न भूत है, न भविष्य, न वर्तमान – केवल अखंड, अचल और अद्वितीय आत्मतत्त्व है, जो समस्त काल, देश और वस्तु को व्याप्त किए हुए है। वही आत्मा सर्वत्र है, वही अनंत का आधार है, वही शिव, वही सत्य, वही योग है। ऐसे अद्वैत योग को शत–शत नमन है।

यह अद्वैतानुभव न केवल ज्ञान की चरमसीमा है, अपितु योग की सच्ची सिद्धि भी है। यही वह दृष्टि है, जो द्वैत के संपूर्ण आवरण को भेदकर आत्मा को उसके परमस्वरूप से एकात्म कर देती है। जब साधक इस स्थिति को प्राप्त करता है, तब न वह करता है, न देखता है, वरन् स्वतः वही हो जाता है – एकमात्र सत्ता, शुद्ध चैतन्य, शाश्वत अस्तित्व।

जब साधक समाधिस्थ चित्त द्वारा अंतरात्मा की निस्तब्ध गहराइयों में उतरता है, तब उसे अनुभव होता है कि जिसे वह 'दूसरा' समझता था, वह भी उसी परमसत्ता का ही प्रतिबिंब है। आत्मा और परमात्मा का यह अभेदबोध ही योग की चरम स्थिति है – जहाँ 'मैं' और 'तू' का भेद विलीन हो जाता है और केवल एकरस तत्त्वचैतन्य की धारा प्रवाहित होती है।
ऋग्वेद में भी योग की आवश्यकता का वर्णन किया गया है –

यस्मादृते न सिद्धति यज्ञोविपश्चतश्चन।

जिसका अर्थ है कि योग के बिना विद्वान का कोई भी यज्ञ कर्म सिद्ध नहीं होता है। एक अन्य प्राचीन पवित्र ग्रंथ अर्थात् योग बीज में भी एक स्थान पर कहा गया है कि –
योगहीनम् कथं ज्ञानं मोक्षदं भवतिश्वरि।।

अर्थात् हे देवी ! यदि ज्ञान योगविहीन हो, तो वह ज्ञान मोक्षप्रद कैसे हो सकता है? इस श्लोक में स्पष्ट कहा गया है कि केवल शास्त्रीय ज्ञान, तर्क या वाचनशीलता पर्याप्त नहीं है। जब तक वह ज्ञान योग अर्थात् आत्म–अनुभव, साधना, संयम एवं ध्यान के माध्यम से आत्मा में साकार नहीं होता, तब तक वह मोक्ष अर्थात् आत्ममुक्ति प्रदान करने में असमर्थ है। योग उस सेतु के समान है जो ज्ञान को केवल बौद्धिक पटल से उठाकर आत्म–साक्षात्कार तक पहुँचाता है। इसलिए यह उद्‌घोषणा हमें स्मरण कराती है कि मोक्ष की सिद्धि हेतु ज्ञान और योग का समन्वय अपरिहार्य है।

योगशिखोपनिषद् में भगवान शंकर ने देवी पार्वती को योग का महत्व बताया है –

ज्ञाननिष्ठो विरक्तोऽपि धर्मज्ञोऽपि जितेन्द्रियः।
बिना योगेन देवोऽपि न मुक्तिं लभते प्रिये ।।

हे प्रिय, एक महान ज्ञान वाला व्यक्ति, जो धर्म से ऊपर है, जो अपनी सारी इंद्रियों, यहां तक कि किसी भी भगवान पर विजय प्राप्त कर चुका है, फिर भी वह योग के बिना मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता। यह उद्घोषणा स्पष्ट करती है कि केवल ज्ञान, वैराग्य, धर्मनिष्ठा या इन्द्रिय–निग्रह – इनमें से कोई भी तत्व अकेले मोक्ष के लिए पर्याप्त नहीं है। जब तक साधक योग के द्वारा आत्मा और परमात्मा के मध्य की दूरी को लांघ नहीं लेता, तब तक उसकी साधना अपूर्ण मानी जाती है।

योगशिखोपनिषद् के अनुसार हठयोग में आया हुआ हठ शब्द, 'हं' और 'ठं' से मिलकर बना है।

हकारेण तु सूर्यः स्यात् ठकारेणोन्दुरूच्यते।
सूर्य चन्द्रमसौरेक्यं हठ इत्यमिधीयते।।

अर्थात् हकार सूर्य स्वर और ठकार से चन्द्र स्वर चलते हैं। इन सूर्य और चन्द्र स्वरों को प्राणायाम आदि के विशेष अभ्यास से, प्राण की गति को सुषुम्ना में प्रवाहित करना ही हठयोग है।

श्वेताश्वतर उपनिषद के दूसरे अध्याय में योग के महत्व का वर्णन इस प्रकार किया गया है–

लधुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादं स्वरसौष्ठवं च ।
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति ।।

योग से सबसे पहले शरीर में हल्कापन महसूस होना, अच्छा स्वास्थ्य, किसी भी इच्छा से मुक्ति, चमक जिससे आंखों में मिठास, मीठी आवाज, खुशबू और मल–मूत्र आदि में कमी आती है । योग के बारे में श्वेताश्वतर उपनिषद में यह भी वर्णित है कि –

न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्।

उसे न तो कोई रोग है, न क्षय है, न मृत्यु है, क्योंकि वास्तव में, उन्होंने योग की अग्नि से भरा शरीर प्राप्त किया है, जिसका अर्थ है जो योग की अग्नि में अपने शरीर को जला देता है, वह रोगों से, उम्र बढ़ने से और मृत्यु से मुक्त हो जाएगा। अंततः उसे योग का शरीर प्राप्त होता है ।

योगशिखोपनिषद में योग का विशद वर्णन इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है–

योग शिखां महागुह्यं यो जानाति महामतिः।
न तस्य किंचित्ज्ञानं त्रीषु लोकेषु विद्यते ।।

जिसका अर्थ है एक अत्यंत बुद्धिमान साधक जो योग शिक्षा के महान रहस्य को जानता है तो तीनों लोकों में उसके लिए कुछ भी अज्ञात नहीं है। महर्षि पतंजलि ने भी योग सूत्र में मन की इच्छाओं पर नियंत्रण को इस प्रकार वर्णित किया है–

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः।

योग चित्त की वृत्तियों को रोकना (नियंत्रित करना) है। योग वह अवस्था है जब मन की चंचल तरंगें, इच्छाएँ, द्वंद्व, स्मृतियाँ आदि शांत हो जाती हैं। चित्त की वृत्तियाँ जब निरुद्ध

हो जाती हैं, तब मनुष्य अपने स्वरूप में स्थित होता है और आत्मज्ञान प्राप्त करता है। यही योग की पराकाष्ठा है।

महर्षि पतंजलि इसी संदर्भ में कहते है कि–
तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।

तब (वृत्तियों के शांत होने पर) दृष्टा (आत्मा) अपने स्वरुप में स्थित हो जाता है। जब मन का कोलाहल शांत हो जाता है, तब साधक अपने सच्चे स्वरूप आत्मा को अनुभव करता है। वह जानता है कि वह केवल शरीर या मन नहीं, बल्कि अनादि, शुद्ध चेतना है। यही मुक्ति और आत्मसाक्षात्कार की अवस्था है।

हठयोग प्रदीपिका में भी योग के महत्व को वर्णित करते हुए कहा गया है कि–

युवा वृद्धोऽतिवृद्धो वा व्याधितो दुर्बलोऽपि वा ।
अभ्यासात्सिद्धिमाप्नोति सर्वयोगेष्वतन्द्रितः ।।

चाहे युवा हो, बूढ़ा हो, बहुत बूढ़ा हो, रोगी हो या कमजोर हो, जो आलस्य रहित होकर सभी योगों का अभ्यास करता है, वह सिद्धि प्राप्त करता है। यह श्लोक योग अभ्यास की निरंतरता और लगन के महत्व पर जोर देता है, चाहे व्यक्ति की शारीरिक स्थिति कैसी भी हो।

भगवान कृष्ण पवित्र श्रीमद्भगवद्गीता में सच्चे योगी के बारे में बताते हुए कहते हैं कि–
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।

सफलता और असफलता में समभाव बनाए रखना ही योग है। इस श्लोक में श्रीकृष्ण अर्जुन को सिखाते हैं कि सच्चा योगी वह है जो सफलता और असफलता की दोनों परिस्थितियों में लाभ और हानि, जय और पराजय में समभाव रखता है। ऐसा व्यक्ति मानसिक रूप से स्थिर रहता है और किसी भी परिस्थिति में विचलित नहीं होता। यह ' स्थिरबुद्धि योगी ' का लक्षण है।

श्रीमद्भगवद्गीता में इसी संदर्भ में योग के बारे में इस प्रकार कहा है कि –
योगः कर्मसु कौशलम्।

योग का अर्थ है– कर्मों में कुशलता। यह श्लोक बताता है कि योग केवल ध्यान या आसन नहीं है, बल्कि वह जीवन के प्रत्येक कार्य में संतुलन और दक्षता बनाए रखने की कला है। जब कोई व्यक्ति बिना किसी फल की अपेक्षा के अपने कर्मों को श्रद्धा, निष्ठा और समर्पण से करता है। तब वह कर्मयोगी कहलाता है। कर्म को साधना में रूपांतरित करना ही इस योगदृष्टि का मर्म है। यही कर्मयोग वह माध्यम है जिसके द्वारा साधक न केवल बाह्य संसार में संतुलन स्थापित करता है, अपितु अंतःकरण की शुद्धि के द्वारा आत्मसाक्षात्कार की दिशा में भी अग्रसर होता है।

योग जटिल और सरल दोनों है। यह सामान्य के लिए बहुत सरल है। इसके अनुसार इसका अर्थ है तन और मन को स्वस्थ बनाना। शरीर को बीमारियों से मुक्त किए बिना हम

अपने मानव जीवन को सुखी नहीं बना सकते। आज हम कई बीमारियों से छुटकारा पाकर स्वयं को स्वस्थ रख सकते हैं लेकिन सांसारिक जीवन में स्वस्थ शरीर ही पर्याप्त नहीं है, उसके साथ हमारा मन भी स्वस्थ होना चाहिए। आधुनिक सभ्यता जितनी आगे बढ़ रही है, हमारी गति भी हमारे जीवन में बढ़ रही है, अंत में तनाव भी बढ़ रहे हैं। देश आधुनिकीकरण में जिस चीज की प्रगति कर रहा है, उसी अनुपात में मानव मन में तनाव भी बढ़ रहा है और उनके जीवन में अशांति बढ़ती जा रही है। आज अमेरिका में करोड़ों लोग ऐसे हैं जो बिना दवा ग्रहण किए निद्रा मग्न नहीं हो सकते। मन के तनाव को अल्प करने के लिए उन्हें कई औषधियों के सेवन की आवश्यकता होती है। आज वहां लाखों लोग योग की ओर आकर्षित हो रहे हैं। वे योग में अपनी समस्याओं का समाधान खोज रहे हैं। हमें मन की इच्छाओं को नियंत्रित करके, ऐसे कौशल के साथ काम करना चाहिए कि हमारे जीवन में कोई तनाव न रहे। हमें शारीरिक और मानसिक शांति मिल सकती है। हमारे आधुनिक जीवन में योग का यही एकमात्र उपयोग है।

एक बार तथागत भगवान बुद्ध घोर तप में लीन होकर एक वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ थे। उन्होंने दीर्घकाल तक किसी भी प्रकार का अन्न–जल ग्रहण नहीं किया, जिससे उनका शरीर अस्थिपंजर मात्र रह गया था – केवल कंकाल–रूप। उसी समय कुछ स्त्रियाँ गीत गाते हुए वहाँ से गुजरीं। उनके गीत के भावार्थ में यह सूक्त वाक्य निनादित हुआ– *'ना तो जीवन के तारों को इतना ढीला छोड़ो कि वे स्वरहीन हो जाएँ और ना ही इतना कसो कि वे टूट जाएँ'।*

यह स्वर जैसे ही बुद्ध के ध्यानगर्भ में प्रवेश करता है, एक दिव्य अंतर्बोध उत्पन्न होता है। उन्होंने साक्षात अनुभूति की कि न तो विषयों में लिप्तता, और न ही कठोर आत्मदमन – दोनों ही मार्ग सत्य की ओर नहीं ले जाते। यही वह क्षण था, जब उन्हें 'मध्यमार्ग' की प्राप्ति हुई। यही दृष्टि आगे चलकर उनके संपूर्ण धर्मदर्शन की आधारशिला बनी।

योग का उद्देश्य शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य की प्राप्ति है। यह उनकी एकाग्रता, स्मृति और रचनात्मकता को विकसित करने के लिए एक वरदान है। यह मांसपेशियों की ताकत, सहनशक्ति, प्रतिरक्षा स्थिरता, सतत तीक्ष्णता, बुद्धि, स्मृति, भावनात्मक स्थिरता में सुधार करने और पूरी तरह से एक सकारात्मक शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य बनाए रखने में मदद करता है।

स्वामी विवेकानंद कहते हैं, "यह किसी के विकास को एक जीवन या कुछ महीनों या किसी के शारीरिक अस्तित्व के कुछ घंटों में संपीड़ित करने का एक साधन है"। उन्होंने योग को चार धाराओं में वर्गीकृत किया, जैसे काम, पूजा, दर्शन और मानसिक नियंत्रण। कार्य के मार्ग में कर्म के फल के प्रति अनासक्ति के दृष्टिकोण के साथ कार्य करना शामिल है। इससे मन में स्थिरता आती है।

भावनाओं पर नियंत्रण ही पूजा मार्ग की कुंजी है। यह भावनात्मक अस्थिरता को नियंत्रित करने में मदद करता है ताकि इसमें शामिल ऊर्जा का ठीक से उपयोग किया जा सके। दर्शन का मार्ग बौद्धिक तीक्ष्णता और खुशी प्राप्त करने के लिए है। मानसिक नियंत्रण का मार्ग हमें अपने जीवन के लगभग सभी प्रयासों में सफलता प्राप्त करने के लिए हमें सक्षम बनाता है। यह चेतना के उच्च स्तरों तक पहुंचने के लिए एक व्यावहारिक और आसान दृष्टिकोण देता है।

इस प्रकार, योग की ये चार धाराएँ मनुष्य को चार अलग–अलग स्तरों पर अपने व्यक्तित्व को विकसित करने में मदद करती हैं– शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, भावनात्मक और साथ ही साथ आध्यात्मिक प्रगति लाती हैं। इस कला के माध्यम से हर कोई परमात्मा का अनुभव कर सकता है। दीर्घायु और खुशी के अतिरिक्त दर्द और अज्ञानता से मुक्ति के परमानंद का आनंद ले सकता है। यदि हम अभी भी सांस ले रहे हैं, तो योग शुरू करने में कभी भी जल्दी या देर नहीं होती है। यहां तक कि योग के कारण स्वास्थ्य के प्रति लोगों का दृष्टिकोण नाटकीय रूप से बदल गया है, क्योंकि वे अपनी रोजमर्रा की समस्याओं के जवाब की तलाश करते हैं।

निष्कर्ष

योग मात्र क्रिया नहीं, अपितु चेतना है; वह चमत्कार नहीं, किंतु जीवन का सहज रहस्य है। यह एक ऐसी दिव्य साधना है जो जीवन की गहनतम गुत्थियों को सुलझाने की क्षमता रखती है। आज के अर्वाचीन और तनावपूर्ण युग में जब मनुष्य बाह्य आकर्षणों में उलझकर आंतरिक शांति से वंचित हो गया है, तब योग उसके अंधकारमय जीवन में जीवनदीप बनकर प्रकट होता है।

योग भारत की पुरातन परंपरा का अमूल्य रत्न है– एक ऐसा आध्यात्मिक अनुष्ठान, जो मन और शरीर, विचार और कर्म, संयम और तृप्ति, मनुष्य और प्रकृति के मध्य समरसता स्थापित करता है। यह केवल शारीरिक व्यायाम नहीं, अपितु जीवन को सम्पूर्ण उन्नत करने वाला मार्ग है। योग, आत्मा और परमात्मा के मिलन का वह पुल है, जो मनुष्य को उसके मूल से जोड़ता है।

यह जीवन को न केवल परिवर्तित करता है, अपितु परिष्कृत भी करता है– यह जीवन पद्धति को साधना में, चेष्टा को ध्यान में और अस्तित्व को अनुभूति में रूपांतरित करने की कला है। योग मनुष्य के आंतरिक संसार में दीपशिखा की भाँति प्रकाश भरता है, जहाँ से शांति, सहिष्णुता और संतुलन की किरणें प्रस्फुटित होती हैं।

वर्ष 2014 में भारत ने जब संयुक्त राष्ट्र महासभा में 'अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस' का प्रस्ताव प्रस्तुत किया, तो यह विचार न केवल स्वीकृत हुआ, वरन् विश्व–भर के 177 देशों का समर्थन प्राप्त कर विश्व मानचित्र पर भारतीय योग की गरिमा को प्रतिष्ठापित कर गया। 21 जून को

'अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस' के रूप में वैश्विक स्वीकृति प्राप्त होना भारत की सांस्कृतिक विजय ही नहीं, अपितु योग की सार्वभौमिकता का जीवंत प्रमाण भी है।

बीते वर्षों में योग के प्रति जनमानस में जो अपूर्व आकर्षण उत्पन्न हुआ है, वह इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि योग अब केवल भारत की धरोहर नहीं, वरन् समस्त मानवता का पथप्रदर्शक बन गया है। इसके दिव्य प्रकाश ने लोगों की सोच, स्वस्थ दृष्टिकोण और जीवन मूल्य को नये सिरे से परिभाषित किया है। आज, जब समकालीन जीवन विकर्षणों से घिरा है, योग ही वह केंद्र बिंदु है, जहाँ से आंतरिक शांति, संतुलन और समाधान की धारा प्रवाहित होती है।

अतः योग एक विधा नहीं, जीवन की कला है– यह बाह्य अस्तित्व से भी परे, आंतरिक गहराइयों की ओर यात्रा है; यह मनुष्य की आत्मा को ब्रह्म से मेल कराने वाला प्रकाश मार्ग है।

संदर्भः

- चौबे, बी.बी., ऋग्वेद में प्रकृति का उपचार, वैदिक साहित्य सदन होशियारपुर, 1970।
- पांडे बैजनाथ, कठोपनिषद् (प्रथम भाग)।
- सरस्वती, स्वामी समर्पणानन्द, श्रीमद्भगवद्गीता, दिल्ली संस्कृत अकादमी।
- प्रसाद राम, पतंजलि योग सूत्र, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स; 1912 संस्करण का पुनर्मुद्रण (1 मार्च 2007)।
- विद्यालंकार सुभाष, हठयोगत्रयी (गोरक्षपद्धति, घेरण्ड संहिता एवं हठयोग प्रदीपिका), प्रभात प्रकाशन दिल्ली।
- विद्यालंकार सुभाष, योग उपनिषद, प्रभात प्रकाशन दिल्ली।
- स्वामी अनंत भारती, योग उपनिषद संग्रह, चौखंभा ओरिएंटलिया, दिल्ली।
- अयंगर, श्रीनिवास, द योगा उपनिषद, द अड्यार लाइब्रेरी, मद्रास, 1938।
- श्वेताश्वतर–उपनिषद, गीता प्रेस गोरखपुर।
- 12 दिसंबर, 2014, यूएनआईसी/प्रेस विज्ञप्ति/233–2014।